अध्ययन सामग्री
विषय- हिन्दी
सेमेस्टर- प्रथम(01) स्नातकोत्तर
प्रश्न पत्र- तृतीय(cc-03)
जैन साहित्य की सामान्य विशेषताएं
पदनाम- डॉ स्मिता जैन
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
एच डी जैन कॉलेज, आरा
11:52

Scanned with CamScanner

जैन साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

अपभ्रंश साहित्य को जैन साहित्य कहा जाता है, क्योंकि अपभ्रंश साहित्य के रचयिता जैन आचार्य थे। जैन कवियों की रचनाओं में धर्म और साहित्य का मणिकांचन योग दिखाई देता है। जैन कवि जब साहित्य निर्माण में जुट जाता है तो उस समय उसकी रचना सरस काव्य का रूप धारण कर लेती है और जब वह धर्मोपदेश की ओर झुक जाता है तो वह पद्य बद्ध धर्म उपदेशात्मक रचना बन जाती है। इस उपदेश प्रधान साहित्य में भी भारतीय जनजीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष के दर्शन होते है। इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ इसप्रकार है :-

१) उपदेश मूलकता :- उपदेशात्मकता जैन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति है, जिसके मूल में जैन धर्म के प्रति दृढ़ आस्था और उसक[illegible] लिए जैन कवियों ने दैनिक जीवन की प्रभावोत्पादक घटनाएँ, आध्यात्म के पोषक तत्व, चरित नायकों, शलाका पुरूषों, आदर्श

Scanned with CamScanner

श्रावकों, तपस्वियों तथा पात्रों के जीवन का वर्णन किया है। इसीलिए इस साहित्य में उपदेशात्मकता का स्वर मुख्य बन गया है।

२) विषय की विविधता :- जैन साहित्य धार्मिक साहित्य होने के बावजूद सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक विषयों के साथ ही लोक-आख्यान की कई कथाओं को अपनाता है। रामायण, महाभारत सम्बन्धी कथाओं को भी जैन कवियों ने अत्याधिक दक्षता के साथ अपनाया है। जहाँ तक सामाजिक विषयों का सम्बन्ध है, जैन रचनाओं में लगभग सभी प्रकार के विषयों का समावेश हो गया है।

३) तत्कालीन स्थितियों का यथार्थ चित्रण :- जैन कवि राजाश्रित नहीं थे, अत: राजाश्रय का दबाव और दरबारी अतिरंजना से इनकी रचनाएँ मुक्त है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में तत्कालीन स्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है। आदिकालीन आचार-विचार, समाज, धर्म, राजनीति आदि की सही स्थितियों को जानने के लिए यह रचनाएँ पर्याप्त रूप में सहाय्यक सिद्ध होती है।

४) कर्मकाण्ड़ रूढ़ियों तथा परम्पराओं का विरोध :- जैन अपभ्रंश कवियों ने बाह्य उपासना, पूजा-पाठ, शास्त्रीय ज्ञान, रूढ़ियों और परम्पराओं का घोर विरोध किया है, किन्तु इनके स्वर में कटुता या परखड़ता नही मिलती। मंदिर, तीर्थ शास्त्रीय ज्ञान, मूर्ति, वेष, जाति, वर्ण, मंत्र, तंत्र, योग आदि किसी भी संस्था को यह नही मानते। चारित्रिक अथवा मन की शुद्धता को ये हर व्यक्ति के लिए एक आवश्यक वस्तु मानते है। धन-सम्पत्ति की क्षणिकता, विषयों की निन्दा, मानव देह की नश्वरता, संसार के सम्बन्धों का मिथ्यापन आदि का वर्णन करते हुए इन कवियों ने शुद्ध आत्मा पर बल दिया है।

५) आत्मानुभूति पर विश्वास :- आत्मानुभव को जैन कवियों ने चरम प्राप्तव्य कहा है और यह शरीर में रहता है। आत्मा को जानने के लिए शुभाशुभ कर्मों का क्षय करना आवश्यक है। आत्मा परमात्मा एक ही है। आत्मा को जान लेने के पश्चात् कुछ जानने के लिए नहीं रहता। आत्मानन्द ही सरसीभाव या सहजानन्द है। अपने साधन-पथ की व्याख्या करने के लिए इन्होंने जहाँ-तहाँ प्रेम-भावना के द्योतक प्रिय-प्रियतम की कल्पना का आश्रय लिया है। इसप्रकार इन जैन कवियों ने भोग से त्याग की, शास्त्रज्ञान से आत्मज्ञान की और कर्मकाण्ड़ से आत्मानुभूति की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

६) रहस्यवादी विचारधारा का समावेश :- जैन कवियों की कुछ रचनाएँ रहस्यवादी विचार भावना से ओत प्रोत है। योगिन्द्र मुनि रामसिंह, सुत्रभाचार्य, महानन्दि महचय आदि इस कोटि के कवि है। इनको रहस्यवादी रचनाओं में बाह्य आचार, कर्मकाण्ड़, तीर्थव्रत, मूर्ति का बहिष्कार, देहरूपी देवालय में ही ईश्वर की स्थिति बताना, तथा अपने शरीर में स्थित परमात्मा की अनुभूति पाकर परम समाधि रुपी आ[illegible] आदि इनकी साधना का मुख्य स्वर है। यह आनन्द शरीर में स्थित परमात्मा [illegible] की कृपा से प्राप्त होता है, यह इनकी

Scanned with CamScanner

धारना है।

७) काव्य रूपों में विविधता :– काव्य रूपों के क्षेत्र में जैन साहित्य विविध रूपों से सम्पन्न है। इसमें रास, फागु, छप्पय, चतुष्पदिका, प्रबन्ध, गाथा, जम्नरी, गुर्वावली, गीत, स्तुति, माहात्म्य, उत्साह आदि प्रकार पाये जाते है। अपभ्रंश के कई काव्य–रुपों का प्रयोग जैन कवियों ने किया है लेकिन अधिकांश काव्य रुप ऐसे भी है, जिनके निर्माण का श्रेय जैन साहित्य को जाता है।

८) शांत या निर्वेद रस का प्राधान्य :– जैन साहित्य में करुण, वीर, श्रृंगार, शान्त आदि सभी रसों का सफल निर्वाह हुआ है। 'नेमिचन्द चउपई' में करुण, 'भरतेश्वर बाहुबली रास' में वीर तथा 'श्रीस्थूलिभद्र फागु में श्रृन्गार इस की सफल निष्पत्ति पायी जाती है, किन्तु इन सभी कृतियों के अन्त में शान्त या निर्वेद सभी रसों पर हावी हो जाता है। इसीलिए यह कहना असंगत नहीं होगा कि जैन साहित्य में रसराज शान्त या निर्वेद है।

९) प्रेम के विविध रुपों का चित्रण :– जैन अपभ्रंश साहित्य में प्रेम के पाँच रूप मिलते हैं– विवाह के लिए प्रेम, विवाह के बाद प्रेम, असामाजिक प्रेम, रोमाण्टिक प्रेम और विषम प्रेम। प्रथम प्रकार के प्रेम का चित्रण 'करकंडुचरिउ' में हुआ है। दूसरे प्रकार के प्रेम का उदाहरण 'पउमासिरिचरिउ' में समुद्र और पद्मश्री के प्रेमपूर्वक विवाह में मिलता है। 'जहसरचरिउ' में रानी अमृतमयी का कुबड़े से जो प्रेम था, वह असामाजिक की कोटि में आता है। प्रेम की विषमता का ज्वलन्त उदाहरण 'पउमचरिउ' में रावण का प्रेम है, किंतु रोमाण्टिक प्रेम का ही इस साहित्य में अधिक प्रस्फुटत हुआ है। इसके दो कारण हैं – प्रथम, सामंतवादी इस युग में बहुपत्नी प्रथा थी, दूसरा, धर्म की महिमा बताने के लिए।

१०) गीत तत्व की प्रधानता :– जैन कवियों की रचनाएँ शैली, स्वरूप और लक्ष्य की दृष्टि से गीत काव्य के अधिक निकट है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि गेयता इस युग की प्रमुख विशेषता थी। जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्दों में लय और गेयता का ध्यान रखा गया है। मंगलाचरण के अतिरिक्त स्तुति और वंदना इस काव्य का आवश्यक अंग है। छन्दों में संगीत का पुट पुष्पदन्त और स्वयंभू ने दिया है। कड़वक के छन्दो की गति क्रमश: संगीत के स्वर और वाद्यों के लय पर ही चलती है।

११) अलंकार –योजना :– जैन साहित्य में अर्थालन्कार और शब्दालन्कार दोनों प्रयुक्त हुए है, परंतु प्रमुखता अर्थालन्कारों की ही है। अर्थालन्कारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यक्तिरेक, उल्लेख, अनन्वय, निदर्शना, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, भ्रान्ति, सन्देह आदि का प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है। अधिकांश [illegible]पमान के चुनाव में विशेष परिचय देते है। शब्दालन्कारों में श्लेष, यमक, और अनुप्र[illegible] है।

Scanned with CamScanner

१२) छन्द-विधान :- जैन काव्य छन्द की दृष्टि से समृद्ध है। स्वयंभू कृत 'स्वयंभूछन्द' और हेमचन्द्र विरचित 'छन्दोऽनुशासन' ग्रन्थों में पर्याप्त संख्या में छन्दो की विशिष्ट विवेचना की गई है। जैन काव्य में कड़वक, पट्पदी, चतुष्पदी, धत्ता बदतक, अहिल्य, बिलसिनी, स्कन्दक, दुबई, रासा, दोहा, उल्लाला, सोरठा, चउपद्य आदि छन्दो का प्रयोग मिलता है।

१३) लोकभाषा की प्रतिष्ठा :- जैन साधु ग्राम, नगर-नगर घूमकर धर्म-प्रचार करते थे, इसीलिए उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए लोकभाषा का प्रयोग किया और उसे प्रतिष्ठा प्रदान की।

◆◆◆◆◆◆

Scanned with CamScanner

आदिकालीन लौकिक साहित्य

हिन्दी साहित्य के आदिकाल मे जैन एवं सिद्ध साहित्य धर्मश्रित होने के कारण तथा रासो साहित्य राजश्रित होने के कारण सुरक्षित रह गया. परंतु इस काल में इन दोनों काव्य धाराओं से भिन्न लोक साहित्य की भी रचना हुई लेकिन वह लोकाश्रित होने से सुरक्षित न रह सका। अनेक कारणों से वह साहित्य लुप्त हो गया। विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से लोक में जो थोड़ा–बहुत शेष रह गया उससें इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लौकिक साहित्य भी लोक प्रचलित रहा है। उपलब्ध लोक साहित्य में ''ढोला मारू रा दूहा'', ''बीसलदेव रासो'', ''बसन्त विलास'' ''राउलवेल'', ''उक्ति व्यक्ति प्रकरण'', ''वर्ण रत्नाकर'', ''अमीर खुसरो की रचनाएँ'' तथा ''विद्यापति की पदावली'' को देखकर तत्कालीन लोक साहित्य के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

ढोला मारू रा दूहा :–

राजस्थान में जन–जन का कण्ठहार ''ढोला मारू रा दूहा'' है जिसमें कछवाहा वंश के राजा नल के पुत्र ढोला और पूगल के राजा पिंगल की रूपवती कन्या मारवाड़ी की प्रेमकथा है। यद्यपि मूल कथा का सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों से है, किन्तु राजस्थान के लोक जीवन से जुड़ने के कारण यह काव्य कृति पश्चिमी राजस्थान में अति लोकप्रिय है। यह एक लोकगाथा काव्य है जो राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजस्थान में ढोला और मारवणी को प्रेम के प्रतिक के रूप में स्मरण किया जाता है। ''सन्देश रासक'' एवं ''बीसलदेव रासो'' की भाँति यह भी एक विरहकाव्य है जिसका कथासार इसप्रकार है– बचपन में ही ढ़ोला और मारवणी का विवाह हो जाता है। युवा होने पर मारवणी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती है तो उसके विरह में व्याकुल हो जाती है। वह अपने पति का पता लगाने के लिए कई संदेशवाहक भेजती है लेकिन कोई लौटकर नहीं आता। सभी संदेश वाहकों को मारवणी की सौत मालवणी मरवा देती है और ढोला तक संदेश पहुँचने नहीं देती। अन्त में मारवणी लोकगीत के गायक ढाढ़ी को संदेश देकर भेजती है। वह ढोला तक पहुँचने में सफल हो जाती है। ढाढ़ी के प्रयत्न से ढोला और मारवणी का पुनर्मिलन होता है।

''ढोला मारू रा दूहा'' में परम्परागत बारहमासा का वर्णन नहीं मिलता। इसमें केवल पावस ऋतु का वर्णन है और वह भी विस्तार से। ''ढोला मारू रा दूहा'' में मारवाड़ का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित हो उठा है। इसमें राजस्थानी जनजीवन, प्रकृति, समाज, वातावरण, लोकाचार एवं लोकविश्वासों का जैसा सरस सजीव और स्वाभाविक चित्र उभरा है, वैसा अन्यत्र दुर्लक्ष है। शैली की दृष्टि से ''ढोला मारू रा दूहा'' लोकगीत की श्रेणी में आता है।

१) बीसलदेव रासो :–

हिन्दी के आदिकाल की इस श्रेष्ठ रचना के रचनाकार नर पति नाल्ह है। यह एक प्रेम काव्य है, जिसमें संयोग–वियोग के गीत गाये गए है। इस कृति में अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) तथा भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरल एवं सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। राजा बीसलदेव अपनी नवविवाहिता रानी

Scanned with CamScanner

राजमती के व्यंग्य बाणों से रूष्ट होकर उड़िसा राज्य चला जाता है तथा बारह वर्ष तक लौटकर नहीं आता। पति के वियोग से अत्यन्त दु:खित रानी एक पंडित द्वारा अपने पति बीसलदेव को सन्देश भेजती है। अन्त में बीसलदेव के लौट आने पर दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है। सम्पूर्ण कथा १२० छन्दो और चार खण्डों में विभक्त है।

बीसलदेव रासो में श्रृन्गार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही सुन्दर एवं हृदयग्राही वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। प्रेषितपतिका की विरह व्यन्जना बड़ी मार्मिक बन गई है। बारहमासा वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण बढ़ा ही सजीव बन गया है। विरह काव्य होने के कारण बीसलदेव रासो में संयोग के मंसलता पूर्ण चित्तों का प्राय: अभाव है। इस काव्य की नायिका राजमती की आत्मा विद्रोहिणीमन अभिमानी और जबान प्रखर है। उनका चरित्र बड़ा ही सजीव तथा विलक्षण बन पड़ा है। ''मध्ययुग के समूचे हिन्दी साहित्य में जबान की इतनी तेज और मन की इतनी खरी नायिका नहीं दीख पड़ती है। ''अभिव्यक्ति की ताजगी और भागों की तीव्रता के कारण यह रचना लोकमानस में अपना अक्षुभ स्थान बनाएँ हुई है।

२) बसन्त विलास :-

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने विभिन्न प्रमाण देकर ''बसन्त विलास'' का रचना-काल १३ वी १४वी शती के मध्य का माना है। इस कृति के रचयिता का पता नहीं चल पाया है। ''यह एक अत्यधिक सरस साहित्यिक कृति है और आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा-साहित्य के आदिकाल के इतिहास में बेजोड़ है।'' इस रचना में चौरासी दोहों में बसन्त ऋतु और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी वर्णन हुआ हैं। इस काव्य में प्रकृति और नारी दोनों का मदोन्मत्त रूप श्रृंगार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करता है। डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के शब्दों में- 'स्त्री-पुरूष-प्रकृति-तीनों में अजस्त्र बहती मदोन्मत्तता का इस काव्य में जैसा वर्णन मिलता है, वैसा रीतिकालीन हिन्दी कवि भी नहीं कर सके। इसकी भाषा सरस ब्रजभाषा है जिसका विकास परवर्ती भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में और रीतिकाव्य में दिखाई देता है।''

३) राडलवेल :-

वह गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू-काव्य की प्राचीनतम हिन्दी कृति है। इसका रचयिता रोढ़ा नामक कवि माना जाता है। विद्वानों ने इसका रचना-काल दसवीं शताब्दी माना है। इसकी रचना ''राउल'' नायिका के नखशिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। आरम्भ में कवि ने राउल के सौंदर्य का वर्णन पद्य में किया है और फिर गद्य का प्रयोग किया गया है। इस कृति से ही हिन्दी में नखशिख वर्णन परम्परा आरम्भ होती है। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते है, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। कवि ने विषय वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। नायिका राउल का श्रृन्गार आकर्षण से भरा हुआ है। वह सहज रूप में जितनी सुन्दर है उतनी ही सहज-सुन्दर उसकी सज्ञा भी है। इस सौन्दर्य के अनुकूल ही उसकी भाव-दशा भी है।

३) उक्ति-व्यक्ति प्रकरण :-

इस ग्रन्थ की रचना दामोदर शर्मा ने की है। १२ वीं शताब्दी का यह एक महत्वपूर्ण ''व्याकरण ग्रन्थ'' माना जाता है, इसमें बनारस और आसपास के प्रदेशों की तत्कालीन संस्कृति और भाषा आदि पर पर्याप्त प्रकाश ड़ाला गया है। इसकी भाषा के अध्ययन

Scanned with CamScanner

से तत्कालीन गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिन्दी भाषा में तत्सम पदावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है। अत: हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में यह ग्रन्थ अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है।

४) वर्णरत्नाकर :–

मैथिली हिन्दी में रचित गद्य का यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका लेखक ज्योतिशेखर ठाकुर नामक मैथिल कवि था। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार इसकी रचना चौदहवी शताब्दी में हुई होगी। यह एक शब्दकोशनुमा ग्रन्थ है, परन्तु सौन्दर्य ग्राहिणी प्रतिभा भी उसमें निहित है। उसकी भाषा में कवित्व, अलंकारिकता, तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियाँ मिलती है। हिन्दी गद्य के विकास में 'राडलवेल' के पश्चात ''वर्णरत्नाकर'' का योगदान भी कम नहीं कहा जा सकता।

५) अमीर खुसरो की रचनाएँ :–

आदिकाल में शिष्ट हास्य तथा विनोद मूलक रचानाएँ खड़ी बोली में प्रस्तुत करने का श्रेय अमीर खुसरो को है। इनका वास्तविक नाम अबुल हसन था। आदिकाल में खड़ीबोली को काव्य की भाषा बनाने वाले अमीर खुसरो प्रथम कवि है। इन्होंने हिन्दू–मुस्लिमों के बीच एकता स्थापित करने का सर्वप्रथम प्रयास किया था। खुसरों अनेक भाषाओं के विद्वान थे। तुर्की, अरबी, फारसी ब्रज और खड़ीबोली पर इन्हें समान अधिकार प्राप्त था। मनोरंजन के माध्यम से लोक–व्यवहार की शिक्षा देना ही उनके साहित्य का उद्देश्य था। कविता के राजाश्रय में पलने के कारण सामान्य जनता से उसका सम्बन्ध टूट चुका था। खुसरो के प्रयत्न से वह फिर से जनसामान्य के समीप आ गयी। इनके विषय में डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन सटीक जान पड़ता है– ''चारणकालीन रक्तरंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की ड़िंगल कविता उद्धत स्वरों में गूँज रही थी और प्रतिध्वनि और भी उग्र थी। पूर्व में गोरखनाथ की गम्भीर धार्मिक प्रवृत्ति आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल में अमीर खुसरो की विनोदपूर्ण प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक महान निधि है। मनोरंजन और रसिकता का अवतार यह कवि अमीर खुसरो अपनी मौलिकता के कारण स्मरणीय रहेगा।''

खुसरो द्वारा रचित सौ के लगभग रचनाएँ मानी जाती हैं, किन्तु उपलब्ध रचनाओं की संख्या बीस–बाईस से अधिक नहीं है। जिनमें फूटकर पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने ढ़कोसला आदि प्रसिद्ध है। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

पहेलियाँ – १) ''एक धाल मोलियों से भरा, सबके उपर औंधा धरा।
चारों तरफ वह थाल फिरै, एक भी मोती नीचे न गिरे ।।'' (आकाश)

२) ''एक कहानी मैं बहूँ, सुन ले तू मेरे पुत।
बिना परों के वह उड़ गया, बाँध गले में सूत।।'' (पतंग)

मुखरियाँ – १) ''वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे बाके बोल, क्यों सखि साजन न सखि ढोल।।''

२) ''जब मेरे मन्दिर में आवे, सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर सखि साजन ना सखि मच्छर।।''

Scanned with CamScanner

दो सुखने :– १) पान सड़ा क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? (फेरा न था)
२) ब्राह्मण प्यासा क्यों ? गधा उदासा क्यों ? (लोटा न था)

ढ़कोसला :– ''खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया चलाय।
आया कुत्ता खा गया तु बैठी ढ़ोल बजाय।।''

६) विद्यापति की पदावली :–

बिहार के दरभंगा जिले में विसपी गाँव में जन्मे विद्यापति हिन्दी के आदि–गीतिकार माने जाते हैं। मधुर गीतों के रचयिता होने के कारण इन्हें अभिनव जयदेव के नाम से भी जाना जाता है। विद्यापति महान पण्डित थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखी। हिन्दी साहित्य में विद्यापति की अशुण्ण कीर्ति का आधार उनके तीन ग्रन्थ है– कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। विद्यापति पदावली में उन्होंने राधा–कृष्ण प्रणय–लीलाओं का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में इनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। जयदेव के गीत–गोविन्द से प्रभावित होकर उन्होंने पदावली का प्रणयन किया है। पदावली में इनका श्रृंगारी रूप पूर्णत: उभर आया है। वैसे तो श्रृंगार के दोनो पक्षों–संयोग और वियोग का वर्णन इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है पर जो तन्मयता संयोग श्रृंगार के चित्रण में दिखाई देती है, वह वियोग पक्ष में नहीं। वस्तुत: विद्यापति संयोग पक्ष के सफल गायक है और प्रेम के परम पारखी है। विद्यापति अपने राधा–कृष्ण सम्बन्धी मधुर गीतों के लिए हिन्दी साहित्य में सदैव अमर रहेंगे।

लौकिक साहित्य की सामान्य विशेषताएँ :–

आदिकालीन साहित्य में रासो साहित्य तथा धार्मिक साहित्य के साथ–साथ साहित्य की एक अन्य धारा भी प्रवाहित होती दिखाई देती है, जिसे लौकिक साहित्य के नाम से जाना जाता है। राजाश्रय और धर्माश्रय से सर्वथा विमुख यह साहित्य लोकाश्रय में पुष्मित एवं पल्लवित हुआ है। इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है :–

१) स्वान्त:सुखाय सृजन :–

आदिकाल का लौकिक साहित्य न तो रासो साहित्य के समान राजाओं, सामन्तों की वीरता का वर्णन करने के लिए लिखा गया है, न धार्मिक साहित्य के समान किसी विशिष्ट धर्म–मत के प्रचार के लिए लिखा गया है। यह कवि के भावों का सहज अविष्कार है। चाहे वह रोड़ा कवि का 'राउलवेल' हो या विद्यापति जैसे राजश्रित कवि का पदावली साहित्य हो या 'ढ़ोला मारा रा दूहा', 'बसन्त विलास' जैसे गुमनाम कवियों का साहित्य हो इसकी अभिव्यक्ति पर कोई बाह्य–प्रयोजन का बोझ नही है। यह साहित्य इन कवियों का खान्त:सुखाय सृजन है।

२) लोकमानस से आप्लवित साहित्य :–

लोकतत्व के संस्पर्श से खान्त: सुखाय लौकिक साहित्य अत्याधिक सरस और प्रभावकारी बन गया है। रासो साहित्य में जहाँ राजाओं–सामन्तों के मन के हास–उल्लास का चित्रण है, वहाँ इस काव्य में लोक–मानस में उठने वाली हास–उल्लास की तरंगे है। यहाँ की

Scanned with CamScanner

राजमती ढ़ोला, या राधा में सामान्य नारी अपने भावों को प्रतिबिम्बित पाती है। चाहे वह भाव संयोग के हो या वियोग के। रूठे पति के उड़िसा चले जाने के बाद राजमती जब यह कहने लगती है कि – ''हे महेश! मुझे स्त्री का जन्म तुमने क्यों दिया? देने के लिए तो तुम्हारे पास और भी अनेक जन्म थे।'' तो उसमें केवल राजमती की हा वेदना की अभिव्यक्ति नही होती, बल्कि वासनाभिभूत पुरूष के स्वार्थ और कामुकतामयी रसिकता की शिकार तत्कालीन हर नारी की आत्मा का करूण क्रन्दन एवं चित्कार अभिव्यक्त होता है। 'ढ़ोला मारू रा दूहा' की 'मारू' की वेदना भी तत्कालीन नारी वेदना का ही एक और स्थर है। इन कृतियों में वर्णित प्रेम महज एक शरीराकर्षित वासना नही है और अशरीरी काल्पनिक भी नहीं है, वह एक लौकिक भाव है जिसमें मन और शरीर अभिन्न है। रासो और धार्मिक साहित्य तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक परिवेश की उपज है और लौकिक साहित्य तत्कालीन जन–समाज की सांस्कृतिक गरिमा को अभिव्यक्त करता है।

३) संयोग और वियोग का सरस चित्रण :–

आदिकालीन लौकिक साहित्य में श्रृन्गार के दोनो पक्षों – संयोग और वियोग का सरस चित्रण हुआ है। 'वसन्त–विलास' और 'विद्यापति की पदावली' का संयोग श्रृन्गार मात्र इस काल को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि परवर्ती काव्य को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करता है। 'वसंत विलास' में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहरी चित्रण हुआ है वह अन्यत्र दुर्लक्ष है। विद्यापति की पदावली में संयोग श्रृंगार की सभी क्रीडाओं –भावों का अनुपन चित्रण हुआ है। विद्यापति संयोग श्रृंगार के कवि है। संयोग श्रृंगार का इतना बेजोड़ चित्रण रीतिकाल में भी दुर्लभ है।

लौकिक साहित्य का संयोग श्रृंगार जितना पुष्ट है, उससे कहीं अधिक वियोग श्रृंगार समृद्ध है। बीसलदेव रासो, ढ़ोला मारू रा दूहा विरह–वेदना के सहज और स्वाभाविक उच्छवास है।

४) नख–शिख वर्णन – परम्परा का प्रणयन :–

'राडलवेल' आदिकालीन लौकिक साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है जो गद्य–पद्य मिश्रित चम्पू काव्य है। इसी रचना से हिन्दी में नख–शिख वर्णन की परम्परा का आरम्भ होता है। बीसलदेव रासो, वसन्त विलास, ढ़ोला मारू रा दूहा और विद्यापति की पदावली में इस परम्परा का विकास देखा जा सकता है। यहाँ एक बात विशेष स्मरणिय है कि राउल, राजमति और मारू का नख–शिख वर्णन कहीं भी उद्दाम रूप में नहीं हुआ है। इन नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में कुलीना गृहणी की मर्यादा को अबाधित रखा गया है।

५) प्रकृति चित्रण :–

आदिकालीन लौकिक साहित्य में प्रकृति का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। श्रृंगार और प्रकृति का रिश्ता अटूट है। 'बीसलदेव रासो' में बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का कार्य करते है। विरह की विभिन्न दशाओं के वर्णन में बिजलियाँ, बादल प्रियविहित नायिका की वियोग दशा के वर्णन में चार चाँद लगा देते है। 'बसन्त विलास' में प्रकृति और नारी दोनों का मदोन्मत्त

Scanned with CamScanner

स्वरूप श्रृन्गार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करता है।

६) गेयता एवं संगीतात्मकता :-

भाव-प्रवणता स्वयं गेय होती है। इसीलिए इस धारा की लगभग सभी रचनाओं में गेयता और संगीतात्मकता पायी जाती है। नारी के सहज श्रृंगार से लेकर उसके मानसिक सौन्दर्य तक पहुँचने की प्रवृत्ति आदिकालीन लौकिक साहित्य में प्रस्फुटित हुई है। नख-शिख वर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास सन्देश प्रेषण ये लौकिक साहित्य के विभिन्न आयाम है। इसीकारण गेयता और संगीतात्मकता का समावेश इस साहित्य में हुआ है।

७) बोली भाषा का परिष्कार :-

आदिकालीन लौकिक साहित्य में तत्कालीन काव्य-भाषा की अपेक्षा जन-बोलियों का प्रयोग हुआ है। इस धारा की प्राचीनतम् कृति 'राडलवेल' से मात्र लौकिक साहित्य की परम्परा ही शुरू नही होती बल्कि बोलचाल की भाषा का साहित्य के लिए प्रयोग करने की एक परम्परा भी शुरू हो जाती है। बीसलदेव रासो, ढ़ोला मारू रा दूहा और विद्यापति की पदावली में भी तत्कालीन स्वीकृत काव्य-भाषा से हटकर बोल-चाल की भाषा का सरस और सशक्त प्रयोग हुआ है।

◆◆◆◆◆◆

Scanned with CamScanner